

क्षेत्रवाद और क्षेत्रीय राजनीतिक दल : एक अध्ययन

रीना देवी

राजनीति विज्ञान विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। भौगोलिक दृष्टि से विशालता के साथ सामाजिक सांस्कृतिक विविधतायें भारत की अनूठी विशेषतायें रही हैं। 200 वर्ष की उपनिवेशवादिता से 1947 में मुक्ति पाकर स्वतंत्र भारत में जनवरी 1950 में एक पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणतन्त्र की स्थापना की। भारत ने विश्व की विभिन्न संस्कृतियों, विचारों नृजातीयों दर्शनों धर्मों भाषाओं, जातियों इत्यादि के प्रति अत्याधिक सहनशीलता का परिचय देते हुये उन्हें अपने में स्थान दिया। फलतः प्रत्येक दृष्टिकोण से भारतीय समाज विभिन्नताओं की लीला भूमि बन गया है। इस नव स्वतंत्र भारत ने भारतीय संविधान में राष्ट्रीय एकता का भाव बड़े ही मांसल रूप से अभिव्यक्त किये हैं।¹

किन्तु भारत की यही विविधता वर्तमान समय में देश की राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिये घातक बन गयी है। वास्तव में भारतीय राजनीतिवादों एवं विवादों की राजनीति है।² जो सदैव किसी न किसी विवाद एवं वाद यथा जातिवाद भाषावाद साम्प्रदायिक इत्यादि से हमेशा जूझती रहती है, इन्हीं में से एक है— क्षेत्रवाद, जो स्वतंत्र भारत की आन्तरिक समस्याओं में सर्वोपरि है, मुख्यतः क्षेत्रवाद की प्रगति को राष्ट्रीय एकता के प्रतिकूल माना जाता है। कुछ लोग अनुभव करते हैं कि क्षेत्रीयता की पहचान अपने में राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने में गतिरोधक नहीं है। दोनों का सहअस्तित्व परस्पर लाभप्रद भागीदार की स्थिति सम्भव है।³

क्षेत्रवाद से तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष के लोगों की इस भावना एवं प्रयत्नों से है जिनके द्वारा वे अपने क्षेत्र विशेष के लिये आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों में वृद्धि चाहते हैं। कभी-कभी अपने विकृत स्वरूप में संघ से पृथक अस्तित्व के पृथक पहचान के लिये, हिंसक रूप से संघर्षरत रहते हैं। डॉ० महेन्द्र प्रताप वर्मा के अनुसार, “क्षेत्रवाद राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष के प्रति विशेष आकर्षण दिखाता है। जिसका ध्येय संकुचित क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति करना होता है।”

क्षेत्रवाद, क्षेत्रीय चेतना की वह अवधारणा है जिससे क्षेत्र विशेष से अपनी पहचान जोड़ने की भावना जुड़ी है। अपनी जन्मभूमि से प्रेम अथवा किसी जगह या क्षेत्र या राज्य उसकी भाषा संस्कृति के प्रति प्रेम सम्बन्धी क्षेत्रवाद राष्ट्र के लिये खतरा नहीं होता किन्तु क्षेत्रीय हितों की प्राप्ति के लिये राष्ट्रीय हितों को ताक पर रखकर पृथकतावादी प्रवृत्तियों को जब प्रोत्साहित किया जाता है तो वह राष्ट्रीय एकता, अखण्डता के लिये चुनौती बन जाती है।

भारतीय राजनीति के संदर्भ क्षेत्रवाद का अर्थ एवं ऐतिहासिक परिदृश्य

क्षेत्रवाद का तात्पर्य एक विशेष क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की उस भावना से है जिसके अन्तर्गत वे अपनी एक विशेष भाषा, सामान्य संस्कृति इतिहास और व्यवहार प्रतिमानों के आधार पर उस क्षेत्र से विशेष अपनत्व महसूस करते हैं और क्षेत्रीय आधार पर स्वयं को एक समूह के रूप में देखते हैं अपने क्षेत्र के हित, विकास साक्षरता इत्यादि के लिये जागरूक रहते हैं। जिससे कुछ निर्माणकारी तत्व सामने आते हैं। इसके द्वारा राजनैतिक विभाजन क्षेत्रीय जनता के मध्य हितों को लेकर होता है। इस संदर्भ में क्षेत्रवाद सकारात्मक रूप में प्रकट होता है। क्षेत्रवाद को इस संदर्भ में डॉ० राधाकमल मुखर्जी, क्षेत्रवाद को राष्ट्रीयता के अधीन मानते हैं।⁴

किन्तु सिक्के के दूसरे पहलू की भाँति क्षेत्रवाद का दूसरा स्वरूप उसकी नकारात्मक छवि को प्रस्तुत करता है। अपने इस संकीर्ण स्वरूप में क्षेत्रवाद का अर्थ उस आदर्शों, व्यवहार, विचार तथा कार्यक्रमों से होता है। जो एक क्षेत्र विशेष के लोगों के मन में मिथ्या, गौरव व श्रेष्ठता की भावना बन पाते हैं और उसी आधार पर वे अपने लिये समस्त राजनीतिक आर्थिक हितों के प्राप्ति के लिये राष्ट्रीय हितों, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता पर कुठाराघात करने को भी तैयार रहते हैं।⁵ इस संदर्भ में क्षेत्रवाद की अवधारणा राष्ट्रवाद की भावना के प्रतिकूल है। राष्ट्रवाद में एक विस्तृत समूह समूचे देश के लिये भक्ति भाव रखता है। जबकि क्षेत्रवाद में यह भक्ति भाव क्षेत्रीय होता है। भारतीय राजनीति में मुख्यतः क्षेत्रवाद का यही रूप देखने को मिलता है।

भारतीय राजनीति के संदर्भ में क्षेत्रवाद, राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र, राज्य या प्रान्त के प्रति विशेष आकर्षण दिखाना इस दृष्टि से क्षेत्रवाद राष्ट्रीयता की वृहद भावना का विलोम है। जिसका उद्देश्य संकुचित क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति होता है। भाषा, धर्म-जाति क्षेत्र आदि के आधार पर राष्ट्रीय हितों, एकता अखण्डता को ताक पर रख कर विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देता है। जैसे की स्वतंत्र और अलग राज्यों के गठन की मांग, क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग, कुछ क्षेत्रों को मिलाकर पृथक राज्य की मांग इत्यादि।

प्राचीन काल से ही भारत में क्षेत्रवाद का रूप विद्यमान रहा है किन्तु राष्ट्रीय हित के लिये वह उतना घातक पहले कभी नहीं रहा जितना स्वतंत्रता पश्चात् से दिखाई दे रहा है।⁶ संविधान निर्माता भी भारतीय

क्षेत्रवादी शक्तियों को नियंत्रित करने के लिये सजग थे इसलिये उन्होंने भारतीय संघीय व्यवस्था में एकात्मकता के तत्वों को भी शामिल किया और क्षेत्रीय शक्तियों को राष्ट्रीय मुख्य धारा से जोड़े रखने की कोशिश भी की, किन्तु दुर्भाग्य से यह प्रणाली वांछित परिणाम न दे सकी। वास्तव में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत जब सम्प्रभु राज्य के रूप में उभरा तो उसके अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों ने अपनी प्रभुसत्ता को बनाने व कायम रखने की कवायद शुरू कर दी। परिणामस्वरूप स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ समय पश्चात् ही नये राज्यों के गठन की मांगें उठने लगीं और क्षेत्रवाद को उसके घातक स्वरूप में पहुँचा दिया।

यद्यपि ब्रिटिश शासनकाल में भी भारत में पृथकतावादी शक्तियाँ अत्याधिक शक्तिशाली थीं। अंग्रेजों ने शासन की सुविधा के लिये देश को कई प्रान्तों में विभक्त कर दिया था। ब्रिटिश काल में भारत दो भागों में विभाजित था— (1) ब्रिटिश भारत, (2) देशी रियासतें। जहाँ प्रान्तों में कुछ एकरूपता थी वही देशी रियासतें प्रशासनिक एकरूपता से वंचित थे। आकार और प्रशासन की दृष्टि से देशी रियासतों में अनेक भेद पाये जाते थे। ब्रिटिश शासक फूट डालों और राजकरो नीति के आधार से इन पर अपनी पकड़ मजबूत किये हुये थे। 1947 में भारत को स्वतंत्रता तो मिली परन्तु विखण्डित रूप में। दो देशों का निर्माण हुआ भारत और पाकिस्तान एक साथ ही अंग्रेजों ने देशी रियासतों के लिये यह भी घोषणा कर दी कि वह अपनी इच्छानुसार चाहे पाकिस्तान में मिले या भारत में या वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी कायम रख सकते हैं।⁶ किन्तु सरदार बल्लभ भाई पटेल की राजनीतिक सूझबूझ से एवं देशी रियासतों के नरेशों की राष्ट्रीय भावना एवं तत्कालित परिस्थितियों को देखते हुये स्वयं को भारत के साथ विलयीकरण के लिये तैयार कर लिया। इस प्रकार 562 देशी रियासतों को भारत में विलय से सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधते हुये जहाँ भारत में संघीय शासन की व्यवस्था की गई वही देश में व्याप्त विभिन्नताओं के आधार पर केन्द्र को भी मजबूत बनाये रखा गया परन्तु जल्द ही देश के सामने राज्यों के पुनर्गठन का सवाल आ खड़ा हुआ क्योंकि भारतीय स्वतंत्रता के समय जो सीमायें निर्धारित की गई थी वह भारतवासियों के लिए अस्वाभाविक एवं आतार्किक थी। प्रदेशों की सीमाओं के निर्धारण में भाषा एवं संस्कृति की समरूपता का कोई ध्यान नहीं रखा गया था।⁷

राष्ट्रीय संघर्ष के दौरान भी क्षेत्रवादी भावना विशेषकर भाषा और संस्कृति को राष्ट्रवाद के पक्ष में पूरी तरह घुला देने की त्यागवृत्ति नहीं दिखी थी। स्वाधीनता की लड़ाई के दौरान ही यह प्रश्न उठने लगा था कि स्वतंत्र भारत में विभिन्न भाषा-भाषियों की स्थिति क्या होगी? क्या उन्हें अपनी क्षेत्रीय संस्कृति की अस्मिता की रक्षा करने दी जायेगी और उनकी अपनी पहचान सुरक्षित रह सकेगी? इस प्रकार क्षेत्रवाद का उदय ब्रिटिश शासन की विरासत ही दिखती है। आजाद भारत के प्रारम्भिक 20 वर्षों में सबसे बड़ा विभाजनकारी मुद्दा भाषा की समस्या थी। आजादी के तुरंत बाद सर्वप्रथम भाषा के आधार पर ही राज्यों के पुनर्गठन का सवाल खड़ा हो गया। जिसके लिये व्यापक जन-आन्दोलन शुरू हो गये थे। आगे चलकर भारत में सरकारी भाषा शिक्षा के माध्यम राजस्व और स्रोतों के बँटवारे इत्यादि के प्रश्नों को लेकर क्षेत्रवाद की भावना में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी।⁸

आजादी के पश्चात् आन्ध्र प्रदेश के गठन के उपरान्त यह प्रवृत्ति और बढ़ने लगी। कभी भाषा के आधार पर, कभी असन्तुलित विकास के नाम पर, कभी नृजातीयता के आधार पर क्षेत्रवादी प्रवृत्ति को बल मिलता रहा। विभिन्न राजनीतिक दल जनता के नाम पर अपनी स्वार्थ पूर्ण राजनीति को पोषित कर क्षेत्रवादी प्रवृत्ति को भड़काने में लगे रहे हैं। जो संघ से स्वतंत्र राज्यों की मांग, संघ में पृथक राज्यों की मांग, अत्याधिक स्वायत्तता की मांगों में दिनों दिन वृद्धि का कारण बने हुये हैं।

यद्यपि राज्यों के पुनर्गठन के लिये स्वतंत्रता पश्चात् कई आयोगों की स्थापना भी की गई जैसे एस0के0 दर की अध्यक्षता में गठित दर आयोग (1948) जो भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन पर विचार करने के लिये गठित किया गया था। जे0बी0पी0 कमेटी (1948) जो कांग्रेस द्वारा गठित एक उच्च शक्ति समिति था। जिसके जवाहर लाल नेहरू, बल्लभ भाई पटेल पट्टाभि सीता रमैया प्रमुख सदस्य थे। किन्तु इनकी रिपोर्ट पर जनआकांक्षाओं को संतुष्ट नहीं कर पायी। अंततः 1953 में फज़ल अली की अध्यक्षता में राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की। जिसकी संस्तुति पर 14 राज्य और 6 केन्द्र शासित प्रदेशों की व्यवस्था की किन्तु इसके उपरान्त जन आन्दोलन और उग्र रूप में आ गया। सम्पूर्ण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में क्षेत्रवादी मांग हिंसा, आन्दोलन इत्यादि के रूप में प्रकट होने लगी आन्ध्र प्रदेश के गठन के पश्चात् अन्य राज्यों के गठन का तांता लग गया जो 1960 में बम्बई राज्य विभाजित करके महाराष्ट्र और गुजरात के गठन से लेकर 2014 में तेलंगाना के गठन तक आ पहुँचा आज भारत में 29 राज्य और 7 केन्द्र शासित प्रदेश हैं किन्तु क्षेत्रवादी मांगें आज भी अपना सर उठाये हुये हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों से पृथक राज्यत्व की मांगें उठा रही हैं (यथा उत्तर प्रदेश में पूर्वांचल, महाराष्ट्र में विदर्भ, पश्चिम बंगाल में गोरखालैंड, बिहार में मगध इत्यादि)। इस विघटनकारी प्रवृत्ति ने देश की राजनीति को आज तक उलझाये रखा है। जिससे देश के राजनीतिक विकास को काफी क्षति पहुँची है।⁹ संविधान निर्माताओं ने क्षेत्रवाद की इस प्रवृत्ति के समाधान के लिये संविधान में यथा सम्भव व्यवस्था भी की। संविधान में देश की एकता और अखण्डता पर जोर दिया, एक नागरिकता और एक राष्ट्र भाषा की व्यवस्था भी की।¹⁰ किन्तु अपनी भाषा और अपने क्षेत्र को सर्वोपरि मानने वाले लोगों ने अपने संकीर्ण स्वार्थों की

पूर्ति एवं अपनी असफल राजनीति को सफल बनाने के लिये राष्ट्रीय एकता अखण्डता को खण्ड-खण्ड कर दिया।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद के स्वरूप

जब हम भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद के स्वरूप की बात करते हैं तो ऊपरी तौर पर भारत में क्षेत्रवाद मुख्यतः दो रूपों में परिलक्षित होता है—

पहला— भारतीय संघ से अलग होकर पृथक राष्ट्र राज्य के गठन की मांग यथा— कश्मीर खलिस्तान।

दूसरा— संघ के भीतर ही पृथक राज्य की मांग या— विदर्भ, पूर्वांचल, बोडोलैण्ड।

किन्तु इसके अतिरिक्त भारतीय राजनीति में क्षेत्रवादी मांगों के विभिन्न आयाम होने कारण यह कभी जाति भाषायी आधार पर दर्शित होते हैं तो कभी उत्तरी-दक्षिणी संस्कृति के आधार पर मनोवैज्ञानिक आयाम को प्रस्तुत करते हैं।

क्षेत्रवाद के पूर्वोक्त रूपों को डॉ० इकबाल नारायण¹¹ ने तीन प्रतिरूपों में वर्णित किया—

1. पराराज्यीय क्षेत्रवाद (Suprastate Regionalism)

2. अन्तरराज्यीय क्षेत्रवाद (Interstate Regionalism)

3. अन्तरराज्यीय क्षेत्रवाद (Interstate Regionalism)

इन तीनों के अतिरिक्त डॉ० भवानी सिंह¹² ने दो अन्य प्रतिरूपों को भी जोड़ा है।

1. राज्यातीत क्षेत्रवाद (Transcendental Regionalism)

2. संक्रमण कालीन क्षेत्रवाद (Transitory Regionalism)

पराराज्यीय क्षेत्रवाद के संदर्भ में दक्षिण के राज्यों केरल, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू आदि के भाषायी आधार पर क्षेत्रीय एकजुटता का उल्लेख किया जो हिन्दी का विरोध करने के लिये अपनी एकजुटता को प्रदर्शित करते हैं। वास्तव में क्षेत्रवाद का यह स्वरूप राज्यों के मध्य पहचान पर आधारित है। जो क्षेत्रवाद के नकारात्मक स्वरूप को प्रदर्शित करती है। भाषा के संदर्भ में दक्षिण लोगों की सोच कि हिन्दी उत्तर की भाषा है जिसे वो दक्षिण पर थोपना चाहते हैं जो सरासर गलत है।

अन्तरराज्यीय क्षेत्रवाद विशेषहितों के आधार पर एक राज्य के विरुद्ध दूसरे राज्य की जनता का मनोवैज्ञानिक समेकन है जो अपने क्षेत्रीय हितों की पूर्ति चाहता है। नर्मदा नदी के जल बँटवारे को लेकर पंजाब, गुजरात एवं राजस्थान की जनता के जो क्षेत्रीय हित एवं भावना है वह भी इसी प्रकार के क्षेत्रवाद का उदाहरण है।

अन्तरराज्यीय क्षेत्रवाद एक राज्य के भीतर ही विशिष्ट भाषायी जातीय धार्मिक अल्पविकास इत्यादि कारणों से जनता की वह मांगें हैं जिसके आधार पर वे अपने हितों को राज्य की शेष जनता से पृथक व विरोधी समझते हैं और अपने हितों अधिकारों एवं विकास के लिये संघ के भीतर ही पृथक राज्य के निर्माण के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। महाराष्ट्र विदर्भ, असम में बोडोलैण्ड, पश्चिम बंगाल में गोरखलैण्ड की जो मांग है, अन्तरराज्यीय क्षेत्रवाद के ही उदाहरण है।

राज्यातीत क्षेत्रवाद के संदर्भ में डॉ० भवानी सिंह कहते हैं कि क्षेत्रवाद हमेशा किसी क्षेत्र विशेष से सम्बद्ध हो यह आवश्यक नहीं है कभी-कभी यह राष्ट्रीय सीमाओं को भी पारकर जाती है। वहीं संक्रमण कालीन क्षेत्रवाद का स्वरूप स्थायी नहीं होता और इसका स्वरूप परिवर्तित होना रहता है।

क्षेत्रवाद के विभिन्न स्वरूपों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि संघीय व्यवस्था के भीतर उत्पन्न होने वाली यह क्षेत्रवादी प्रवृत्ति का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है। यहाँ तक की क्षेत्रवाद के एक मांग में विभिन्न आयाम समाहित हो सकते हैं। कई दशकों से कई रूपों में क्षेत्रवाद भारतीय राजनीति में व्यापक रूप में विद्यमान रहा है जो राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग को क्षत-विक्षत करते ये विखण्डन और पृथकतावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती हैं।

क्षेत्रवाद को प्रेरित करने वाले कारक

क्षेत्रवाद एक बहुआयामी राष्ट्रीय समस्या बन गया है। क्षेत्रवाद विभिन्न कारकों के सम्मिलन की अन्तः क्रिया का परिणाम है। क्षेत्रवादी आन्दोलन उदित होने के कई कारण रहे हैं इसका कोई एक निर्धारक तत्व नहीं है। क्षेत्रवादी मांगों को प्रेरित करने वाले कारक निम्नवत् हैं—

1. सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व :- हमारे देश में भाषायी और सांस्कृतिक विभिन्नता है प्रत्येक क्षेत्र के लोग अपनी क्षेत्रीय भाषा एवं संस्कृति को श्रेष्ठ मानते हैं। राज्यों में भाषा, संस्कृति एवं क्षेत्रीय आहार पर बनी सेनाये यथा शिवसेना, जच्छित सेना एवं हिन्दी सेना आदि ने क्षेत्रीय लोगों के मन की भावनाओं को और अधिक संकीर्ण बनाकर क्षेत्रवादी विकृति को बड़े स्तर पर पोषित कर दिया है, जिसका आधार सांस्कृतिक श्रेष्ठता को बनाया।

2. राजनीतिक कारक :- भारत में कुछ राजनीतिक दल एवं क्षेत्रीय दल ऐसे हैं जो क्षेत्रीयता की भावना को भड़काकर लोकप्रिय होने का प्रयत्न करते हैं। ये दल अपने संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति के लिये भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र आदि का सहारा लेकर स्थानीय और क्षेत्रीय लोगों की भावनाओं को भड़का कर राष्ट्रीय हितों

पर कुठाराघात करते हैं। इन नेताओं का मुख्य लक्ष्य राज्यों विभाजित कर राजनीतिक पदों को प्राप्त करना एवं राजनीति की मुख्य धारा से जुड़े रहना।

3. **संघीय व्यवस्था निर्माण प्रक्रिया :-** क्षेत्रवादी प्रवृत्ति के कुछ बीज संघीय व्यवस्था निर्माण प्रक्रिया में ही निहित हैं। भारतीय संघ के केन्द्रापसारी शक्तियों की सक्रियता का परिणाम है। जिसमें केन्द्र स्वयं विभिन्न इकाइयों का गठन किया ऐसे में क्षेत्रीय प्रवृत्तियों को पूरी तरह मुखर होने का अवसर संविधान सभा में नहीं मिला। पृथक राज्यों के गठन के संदर्भ में जो स्वर उस समय दब गये थे वही आज जनचेतना के अत्याधिक विस्तार एवं विभिन्न प्रतिक्रियाओं का समर्थन पाकर उग्र क्षेत्रवाद के रूप में सामने आ रहे हैं।
4. **भौगोलिक कारण:-** भारत में भौगोलिक कारक क्षेत्रीयता के विकास में प्रभावपूर्ण कारक है। भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत में पर्याप्त विविधता विद्यमान है। भौगोलिक दृष्टि से क्षेत्रों को बाँटने वाली प्राकृतिक सीमाएँ हैं। एक क्षेत्र के सामाजिक धार्मिक रीति-रिवाज, भाषा सांस्कृतिक परम्पराएँ इत्यादि दूसरे क्षेत्रों से भिन्न हैं। इस भिन्नता ने क्षेत्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रो० इकबाल नारायण का मत है, “भारत में क्षेत्रवाद इसकी भौगोलिकता पर आधारित है।” भौगोलिक कारकों के प्रभाव से संस्कृति एवं विकास की भिन्नता उत्पन्न होती है। इस भिन्नता से कभी स्वायत्तता, कभी अलगाव तो कभी संवैधानिक ढाँचे के भीतर ही पृथक राज्यों की मांग का जन्म होता है। भौगोलिक कारकों और तदुत्पन्न क्षेत्रीय पहचान से ही “आमार सोनार बांग्ला” या “भूमिपुत्र” जैसे भावना का जन्म होता है।
5. **उपक्षेत्रीय पहचान :-** उपक्षेत्रीय समूहों और पहचानों के आधार पर छोटी इकाइयों के रूप में राज्यों के पुनर्गठन की मांग केन्द्र की सुदृढ़ स्थिति की उपेक्षा राज्यों की स्वायत्तता की आम मांग के अनुकूल है।¹³ प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति ने अपने पहचान के संकट ने क्षेत्रवाद को चरम स्थिति में ला दिया।
6. **भाषायी कारक :-** भाषायी बहुलता ने भारत में क्षेत्रवादी भावनाओं को पोषित करने मुख्यतः पृथक राज्यों की मांग को पोषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्वतंत्रता के पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात् नीति नियामकों को भाषायी पृथकवाद ने अत्याधिक मात्रा में प्रभावित किया है। आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा आदि प्रान्तों को पृथक राज्य के गठन के लिये जो आन्दोलन चले थे उनमें भाषा का महत्वपूर्ण तत्व था। भारत सरकार ने भाषा के आधार पर राज्यों के गठन करके एक ऐसी समस्या उत्पन्न कर दी है, जिसका अन्तिम समाधान निकालना बड़ा कठिन है। भाषायी विविधता के कारण ही क्षेत्र विशेष भाषायी आधार पर राज्यों के गठन के लिये आन्दोलित रहे। भाषा को लेकर प्रारम्भ से ही उत्तर और दक्षिण राज्यों में हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ आज भी देखने को मिलती हैं।
7. **धर्म :-** धर्म भी क्षेत्रवाद की भावनाओं को पोषित करने में सहायता करता है। पंजाब में अकालीयों की पंजाबी सूत्र की मांग कुछ हद तक धर्म के प्रभाव का परिणाम थी। क्षेत्रवाद को जंग देने के सन्दर्भ धर्म की भूमिका का उल्लेख करते हुए डॉ० अमर जीत सिंह नांरंग लिखते हैं- “किसी भी सामाजिक व्यवस्था में पृथकवादी प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने में सबसे सरल साधन धर्म है। अविकसित व्यवस्थाओं में वर्ग और आर्थिक सम्बन्धों के अभाव के कारण धार्मिक सम्बन्ध अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं। उदाहरण के लिये जम्मू एवं कश्मीर में मुसलमानों का, केरल में मुसलमानों तथा ईसाईयों और उत्तर पूर्व में ईसाईयों का बहुसंख्यक आधार प्रदान करता है।”¹⁴
8. **आर्थिक विषमता :-** क्षेत्रवाद की उत्पत्ति में आर्थिक तत्व भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। भारत में जो आर्थिक स्थिति एवं विकास के दोष-पूर्ण नीति के कारण भी पृथक राज्यों के मांगों का जन्म होता है। अल्प विकास एवं आर्थिक पिछड़ापन जनता में प्रतिक्रियात्मक क्षेत्रवादी विरोध जगाता है। डॉ० अमरजीत नांरंग के अनुसार, “वास्तव में भारत में क्षेत्रवाद देने में आर्थिक और क्षेत्रीय आधार पर विकास विषमताओं और असंतुलन का विशेष योगदान रहा है।”¹⁵ इसी प्रकार क्षेत्रवाद को जन्म देने में आर्थिक कारक का उल्लेख करते हुये डॉ० भवानी सिंह लिखते हैं, “आर्थिक पिछड़ापन एवं इसके परिणामस्वरूप क्षेत्र विशेष की जनता में जाग्रता होने वाली आक्रामक प्रतिक्रिया क्षेत्रवाद को बहुत तीव्र गति से बढ़ावा दिया।” उदाहरण स्वरूप विदर्भ, राजस्थान में उत्तर पूर्वी राजस्थान इत्यादि।
9. **मनोवैज्ञानिक तत्व :-** अपने क्षेत्र के प्रति मानसिक लगाव एवं उसकी उन्नति की भावना ने भी क्षेत्रवाद को जन्म दिया है। क्षेत्रवाद की अवधारणा अन्तहीन विवेचना मानव मस्तिष्क के जटिल भूल भुलैया में फँसकर उलझने के समान है। रॉबर्ट ए० डहल ने अमेरिका राज्य की राजनीति के विवेचना में कहा है कि व्यक्ति का हित उसके क्षेत्रीय राजनीति और राज्य की राजनीति में राष्ट्रीय राजनीति की तुलना में अधिक होता है। इसलिये जब कोई व्यक्ति क्षेत्र और राष्ट्र के मध्य फँसता है तब तुलनात्मक रूप से व्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप से राष्ट्रीयता के ऊपर क्षेत्रीयता को सोचता है। यह क्षेत्रवाद को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इस संदर्भ में डॉ० इकबाल नारायण लिखते हैं, “क्षेत्रवाद के उदय की जड़े नागरिकों के मस्तिष्क में हैं। हर व्यक्ति में राष्ट्रवादी और उपराष्ट्रवादी दोनों ही प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। उपराष्ट्रवादी प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से राष्ट्रवादी प्रवृत्ति से पहले आती है।”¹⁶

वास्तव में भारत में क्षेत्रवाद भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक तत्वों का एक जटिल मिश्रण है। यह कहना कठिन है कि कौन सा तत्व क्षेत्रवाद की उत्पत्ति एवं वृद्धि का मुख्य आधार है परन्तु अन्तिम विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक कारण का कुछ अधिक है। वास्तव में भारत जैसे महान और विविधता पूरे देश में अपनाई गई राजनीतिक व्यवस्था और विकास की प्रक्रिया को जन्म देती है। निःसन्देह कई बार यह प्रक्रिया अत्यन्त गम्भीर दिखाई दे सकती है। आर्थिक स्रोतों की कमी और गैर जिम्मेदार राजनीति द्वारा राजनीतिक समर्थन प्राप्ति के लिये इसका प्रयोग पृथकतावादी प्रवृत्तियों की वृद्धि में किया जाता रहा है।

क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति को रोकने के सुझाव

क्षेत्रवाद जिस प्रकार पूरे भारत में फैला हुआ है। आज उसे नियंत्रण में करना आज हमारी आवश्यकता बन गया है। भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति को रोकने के कुछ सुझाव निम्नवत् हैं—

1. केन्द्र सरकार की नीति कुछ इस प्रकार की होनी चाहिये कि सभी उपसांस्कृतिक क्षेत्रों का संतुलित आर्थिक विकास सम्भव हो जिससे विभिन्न क्षेत्रों के मध्य आर्थिक तनाव कम हो सके। ताकि क्षेत्रवादी प्रवृत्ति को बढ़ने से रोका जा सके।
2. सरकार द्वारा विकास कार्यक्रमों का निर्धारण एवं कार्यान्वयन इस प्रकार होना चाहिए ताकि संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा मिले।
3. भाषायी विवादों को अविलम्ब सात्विक समाधान होना चाहिये।
4. केन्द्रिय मंत्रिमण्डल के सभी क्षेत्रों का संतुलित प्रतिनिधित्व हो ताकि क्षेत्रीय पक्षपातपूर्ण नीतियों का खण्डन हो सके।
5. प्रचार माध्यमों और शिक्षा द्वारा क्षेत्रवाद की संकीर्ण भावनाओं के विरुद्ध वातावरण तैयार किया जाये।
6. पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक विकास पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

क्षेत्रीय राजनीतिक दल

लोकतांत्रिक देश होने के कारण राजनीतिक दल भारत का अभिन्न अंग है। राजनीतिक दलों के बिना किसी भी शासन प्रणाली में न तो सिद्धांतों की संगठित अभिव्यक्ति हो सकती है, न ही नीतियों का व्यवस्थित विकास न संसदीय निर्वाचन के संविधान साधन का विकास।

भारत एक बहुदलीय व्यवस्था वाला राष्ट्र है साथ ही विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है इसलिये यहां राजनीतिक दलों की स्थिति अन्य राष्ट्रों से भिन्न दिखलाई पड़ती है। भारत में राजनीतिक दलों की बढ़ती हुई संख्या, उतार-चढ़ाव, विभिन्न दलों का गठबंधन, उनके बहुमुखी आधार उद्देश्य कार्यक्रम तथा उनकी कार्यप्रणाली ने भारत की राजनीतिक व्यवस्था को जीवन्त किन्तु जटिल बना दिया है। वर्तमान समय में भारतीय दलों की स्थिति अस्थिर सी नज़र आ रही है। संघात्मक शासन व्यवस्था में विद्यमान पृथक प्रदेशों या क्षेत्रों के कारण राजनीतिक दलों को निर्माण और विकास में आसानी होती है।¹⁷

भारतीय राजनीति में मुख्यतः दो प्रकार के दल यथा, राष्ट्रीय राजनीतिक दल एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दल, भारतीय राजनीति को गति प्रदान करते हैं। वर्तमान समय में देश में गठबंधन की राजनीति के सहारे क्षेत्रीय राजनीतिक दल राष्ट्रीय राजनीतिक परिवेश में प्रवेश एवं परिवर्तन कर रहे हैं। राष्ट्रीय दल वे दल होते हैं जिनका प्रभाव क्षेत्र एक से अधिक राज्यों में हो जिनके सदस्यों की संख्या राज्य सभा और लोक सभा में पर्याप्त मात्रा में होते हैं जबकि क्षेत्रीय दल वे दल होते हैं जिनका प्रभाव क्षेत्र सीमित होता है। ये राज्य स्तर पर अपना वर्चस्व कायम करके राष्ट्रीय स्तर पर भी उभरने का प्रयास करते हैं।

भारत में दल प्रणाली का उद्भव कांग्रेस की स्थापना से माना जाता है। जो 1885 में एक दबाव समूह जो एक भारतीय गैर सरकारी संसद के रूप में कार्य करता है, के रूप में अस्तित्व में आया। बाद में कांग्रेस ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया और इसी के नेतृत्व में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् कांग्रेस एक राष्ट्रीय राजनीतिक दल में परिवर्तित हो गया। बाद में धीरे-धीरे अन्य राजनीतिक दल अस्तित्व में आये। 1906 में एक साम्प्रदायिक संस्था के रूप में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति विकसित करना एवं स्वयं के राजनीतिक अधिकारों एवं हितों की रक्षा करना है। बाद में, मुस्लिम लीग भी एक ओर स्वतंत्रता प्राप्ति एवं दूसरी ओर द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर पाकिस्तान की मांग करने लगे। वही 1916 में एक ओर साम्प्रदायिक संस्था हिन्दू महासभा के नाम से संगठित की गयी जो पूर्ण स्वराज प्राप्त करने एवं हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करने के उद्देश्य से अस्तित्व में आयी।¹⁸

भारतीय राजनीतिक दलों को उदय राष्ट्रीय आन्दोलनों के समय से ही देखा जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति की इच्छा और जागृत भारतीयों ने अनेकों संगठनों एवं दलों का निर्माण किया। कुछ क्षेत्रीय दल ब्रिटिश कालीन समय से चले आ रहे थे जो पहले राष्ट्रीय आन्दोलनों में मदद कर रहे थे स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सत्ता प्राप्ति के लिये प्रयासरत हो गये।¹⁹ क्षेत्रीय दल स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले से ही भारतीय राजनीति का प्रमुख हिस्सा रही है जैसे अकाली दल (पंजाब), बोलसविक मजदूर पार्टी, फारवर्ड ब्लाक (माक्सवादी) फारवर्ड

ब्लाक (सुभाष), इण्डियन लेबर पार्टी, नेशनल पार्टी ऑफ इण्डिया, रिवोल्यूशनरी कॉमनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया इत्यादि अनेक क्षेत्रीय दल भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भी थे।

वर्तमान समय में क्षेत्रीय दलों की भरमार है। बदलते भारतीय राजनीतिक परिवेश में क्षेत्रीय दलों की नई भूमिका उभरी है। भारत में संघीय शासन व्यवस्था अपनायी गई। इस व्यवस्था में नीतियाँ मुख्यतः राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं जिसके कारण क्षेत्रीय समस्याओं पर या तो कम ध्यान दिया जाता है या उन्हें उपेक्षित कर दिया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में उन क्षेत्रीय समस्याओं को, मुद्दों को आवाज देने के लिये क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ। इस आधार पर क्षेत्रीय दल के गठन का प्रमुख आधार क्षेत्रवाद ही है।²⁰ वास्तव में, क्षेत्रीय दल क्षेत्रवाद के ऐजेंटों के रूप में राज्य स्तर पर कार्य करते हैं। विगत वर्षों में क्षेत्रीय दलों के बढ़ते शक्तिशाली रूप और राष्ट्रीय राजनीति में उनके बढ़ते प्रभाव ने क्षेत्रवाद को पोषित ही किया है।

क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के उदय के कारण

भारत एक बहुभाषी, बहुजातीय, बहुक्षेत्रीय और विभिन्न धर्मावलम्बियों वाला देश है। भारत के अनेक प्रदेश, राष्ट्रीय राजधानी से दूरी पर स्थित हैं इन प्रदेशों में रहने वाले लोगों की अपनी कुछ ऐसी समस्याएँ हैं, जिन्हें वे केन्द्रीय नेताओं या राष्ट्रीय दलों के स्थान पर क्षेत्रीय दलों द्वारा ही अग्रसित कर सकते हैं। ये दल प्रारम्भ में क्षेत्रीय मांगों की पूर्ति के लिये बनाये जाते हैं इसलिये ही ये क्षेत्रीय उद्देश्यों और भावनाओं को प्रकट करती हैं।

वास्तव में, क्षेत्रीय राजनीतिक दल क्षेत्रवाद कर परिणाम भी हैं और कारण भी। कहीं दलों ने मुद्दें बनाये हैं और कहीं मुद्दों ने दलों का गठन किया है।²¹ भारत जैसे विशाल एवं विभिन्नताओं से भरे देश में क्षेत्रीय दलों के उदय के अनेक कारण हैं।

1. भारत में क्षेत्रीय दल राज्यों की स्वायत्ता को लेकर, उपसंस्कृतियों पृथक राज्यों के निर्माण की मांग को लेकर भी गठित हुये हैं। जैसे- असमगण परिषद, गोरखा जन मुक्ति मोर्चा इत्यादि।
2. क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय दलों के असन्तुष्ट नेताओं द्वारा भी बनाये जाते हैं और अधिक क्षेत्रीय दल कांग्रेस से प्रतिस्पर्धा के कारण विकसित हुये हैं।²²
3. जातीयता (जातीय असंतोष), नृजातीयता, अल्पसंख्यक भाषा के आधार पर भी क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का गठन होता है। उदाहरण तमिलनाडू में ए0डी0एम0 ने 1960 के दशक में हिन्दी, अंग्रेजी के मुद्दे को उठाकर उससे राज्य- राजनीति में भारी सफलता प्राप्त की। पश्चिम बंगाल की राजनीति भी भाषायी विवादों से ग्रस्त रही है।
4. केन्द्र अपनी शक्तियों का प्रयोग मनमाने ढंग से करता रहा है। क्षेत्रीय मुद्दों को राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाने के लिये भी कई दलों का गठन हुआ है।
5. जो प्रदेश भौगोलिक कारण से राष्ट्र की मुख्यधारा से अलग-अलग रहे हैं वहाँ बाद में क्षेत्रवादी क्षेत्रीय दल विकसित हुये। जम्मू कश्मीर में नेशनल कांग्रेस और गोरखाजन मुक्ति मोर्चा।²³
6. धर्म के आधार पर भी क्षेत्रीय दलों का गठन होता है। पंजाब में अकाली दल का गठन धार्मिक व साम्प्रदायिक हितों की रक्षा के लिये किया गया।
7. क्षेत्र में हुये असन्तुलित विकास एवं क्षेत्रीय शोषण से छुब्द होकर भी क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ है।

क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की भूमिका : क्षेत्रवाद के संदर्भ में

स्वतंत्र भारत के राजनीति के प्रारम्भिक वर्षों से ही क्षेत्रीय राजनीतिक दल सामुदायिक आधार पर काफी शक्तिशाली हो रहे हैं। इनमें से कुछ दल जैसे अकाली दल द्रविड़ मुन्नेत्र कडगम, आल तेलगूदेशम पार्टी, असमगण परिषद, शिवसेना इत्यादि ने राज्यों को विशेष रूप देने में सहायक सिद्ध हुये हैं। ये क्षेत्रीय दल 1950 के दशक के आरम्भिक वर्षों में उस समय विशेष रूप से सक्रिय थे जब देश के अन्य भागों में भाषा जाति तथा धार्मिक आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग को लेकर आन्दोलन चल रहे थे राज्यों के पुनर्गठन के बाद अनेक क्षेत्रीय राजनीतिक दल राष्ट्रीय दलों में सम्मिलित हो गये परन्तु क्षेत्रवाद की उग्रता ने न केवल अनेक क्षेत्रीय दलों को जीवित रखा है अपितु उन्हें विकसित होने का अवसर भी मिला। विशेष रूप से 1967 से भारत में विकास के प्रक्रिया के परिणाम सामने आने लगे, जब साधारण में असन्तोष बढ़ने तथा राजनीतिक में अनेक नये वर्गों के सम्मिलित होने से क्षेत्रीय दलों का महत्व और कार्य क्षेत्र अधिक बढ़ा है।

क्षेत्रीय दलों की भूमिका की अपने सकारात्मक और नकारात्मक दोनों स्वरूप दिखती है। अपने सकारात्मक स्वरूप में क्षेत्रीय दल पिछड़े क्षेत्रों, अशिक्षित जनता की समस्याओं की आवाज, क्षेत्र विशेष में खड़े होकर उनकी समस्याओं का समाधान के लिये प्रयत्न कर सकते हैं किन्तु ये सब आज वास्तव में एक आदर्श ही प्रतीत होता है।

आज विभिन्न क्षेत्रीय दल क्षेत्रवाद के संदर्भ में अपनी नकारात्मक भूमिका का ही निर्वहन कर रहे हैं। भारतीय समाज जो धर्म जाति भाषा और संस्कृति के आधार पर संगठित है विभिन्न वर्गों में अपने अलग अस्तित्व की चेतना बढ़ती है शिक्षा के प्रसार से इनमें ऐतिहासिक और सांस्कृतिक गौरव को पुनः स्थापित करने की इच्छा के लिये राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति की इच्छा में ही प्रयत्नशील रहते हैं।²⁴ क्षेत्रीय राजनीतिक दलों

की भूमिका बढ़ाने में राजनीतिज्ञों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बहुत से ऐसे राजनीतिज्ञ हैं जो सत्ता की दौड़ में या तो पीछे रह गये हैं या सत्ता की दौड़ में आना चाहते हैं इसके लिये वे जाति, विकास, पृथक क्षेत्रों के हितों के नाम पर क्षेत्रीय दलों का निर्माण कर क्षेत्रवाद को पोषित करते हैं। वे क्षेत्रीय दल जो क्षेत्रीय भावनाओं के आधार लाकेप्रिय हो रहे हैं वे आर्थिक विकास और विकेन्द्रीकरण के मुद्दे के आधार पर राजनीति की मुख्यधारा स्वयं को जोड़े रखना चाहते हैं। इसलिये ये समय-समय पर ये स्वायत्तता, पृथक राज्यों की मांग विकास, क्षेत्रीय शोषण, अन्तर्राज्यीय विवादों का सहारा लेकर जनसाधारण को भड़काते हैं वो भी उस समय जब या तो चुनाव नजदीक आ रहे होते हैं या उन्होंने पैसा खाना होता है या सुखियों में आना चाहते हैं।

स्थानीय हितों को विकसित करने, हितों की पूर्ति करने संगठित होना या एक दल का निर्माण करना गलत नहीं है किन्तु व्यक्तिगत लाभ हेतु सत्ता प्राप्ति की लालसा के लिये क्षेत्रीय मुद्दों को हवा देना, हिंसा या सहारा लेना, विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों एवं स्थितियों को उत्पन्न कर क्षेत्रवादी प्रवृत्तियों को पोषित करना सही नहीं है। क्षेत्रीय दलों के सहारे राज्य में छोटे-छोटे व्यक्ति की क्षेत्रीय स्तर पर उभर रहे हैं, जिन्होंने कोई त्याग या तपस्या नहीं की, वे सिर्फ राजनीतिक नेतृत्व हड़पना चाहते हैं जो हमेशा विकास और मिथ्या गौरव के नाम पर राष्ट्र में विखण्डनवादी नीति का प्रचार प्रसार करते हैं। विगत वर्षों का इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि अधिकांशतः क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने क्षेत्रीय हितों, क्षेत्रीय विकास की आड़ में राजनीतिक लाभ उठाने का प्रयास करते हैं।²⁵ गोरखालैण्ड की मांग इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। इस आन्दोलन से जुड़ा व्यक्ति चाहे वह सुभाष घीसिंग हो या विमल गुरुंग वे सिर्फ सत्ता प्राप्ति के लिये ही इस आन्दोलन को समय-समय पर उठाते हैं।²⁶

आज क्षेत्रीय दल अपने-अपने राज्यों में ताकतवर होते जा रहे हैं और इसी कारण क्षेत्रीयता राष्ट्रीयता पर हावी होती जा रही है। क्षेत्रीय दलों में आम जनता अत्यधिक सुरक्षा की भावना महसूस करते हैं उदाहरण – जम्मू कश्मीर के लोगों को लगता है कि उन्हें मिला विशेष राज्य का दर्जा व संविधान की धारा 370 लागू किये जाने का मसला राष्ट्रीय दल को समर्थन देने से छिन सकता है। उत्तर पूर्वी क्षेत्र में भी इसी वजय से क्षेत्रीय दलों का महत्व है ताकि वे अपनी अलग पहचान सुनिश्चित कर सकें।

क्षेत्रीय दलों की सबसे खतरनाक नीति है अलगाववादी नीति जिसके कारण ये अपनी मांगों को लेकर सदैव संघर्षशील आन्दोलित एवं उपद्रवों के लिये तैयार रहते हैं।

बहरहाल यह बात पूर्णतया सत्य है कि राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय दलों के लिये विगत वर्षों से एक चुनौती बना हुआ। जिसके कारण राष्ट्रीय दलों के लिये कई जगह अस्तित्व का संकट बनकर उभरा है। एक सशस्त्र विरोधी (विपक्षी) दल के रूप में उभरा है किन्तु क्षेत्रवाद के संदर्भ में क्षेत्रीय दलों की भूमिका केवल वोटों की लड़ाई, सत्ता में वर्चस्व की प्राप्ति तक ही सीमित रह गया। वह अपनी मांगों की पूर्ति के लिये राष्ट्रीय हितों को भी ताक पर रख सकते हैं। देश की एकता अखण्डता को तार-तार कर सकते हैं। ये क्षेत्रीय दल अपनी सकारात्मक भूमिका में एक आदर्श मात्र ही बनकर रहे गये किन्तु इनकी नकारात्मक भूमिका ने क्षेत्रवाद को और अधिक जटिल बना दिया है। जिस तरह शिवसेना गोरखालैण्ड जनमुक्ति मोर्चा, मनसे ने क्षेत्रवाद को नया परिवेश दे दिया।

संदर्भ सूची

1. सिंह अमर नाथ (2008) भारत में राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव, अमर पब्लिकेशन वाराणसी-पृ01.
2. सर्ईद, एस.एम. (2009) भारतीय राजनीतिक व्यवस्था भारत बुक सेंटर, लखनऊ- पृ0सं0 482.
3. नारंग, अमरजीत सिंह, "भारत में राज्यों की राजनीति, अन्तर्गत सुशीला कौशिक (सं.) भारतीय शासन एवं राजनीति हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली- पृ0 277.
4. मंगलानी, डा0 रूपा, भारतीय शासन एवं राजनीति, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर- पृ0सं. 471.
5. सिंह, अमरनाथ 2008 उपरोक्त- पृ0सं. 56.
6. इन्दा, उम्मेद सिंह, भारत में राज्य राजनीति, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर- पृ0 सं0 3.
7. गुहा, विपिन चन्द्र (2009) आजादी के बाद का भारत (1947-2007) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली- पृ0सं. 132.
8. फाड़िया, डा0 जैन – भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन- पृ0सं0 673.
9. सिंह, डा0 वीरकेश्वर प्रसाद (2008) भारतीय शासन एवं राजनीति, ज्ञानदा प्रकाशन- पृ0सं0 597.
10. उपरोक्त- पृ0सं0 596.
11. Narayan, Iqbal (1985) Regional Politics India in P.C. Mathur (ed.) Government and Politics in South Asia, Printwell Publishers, Jaipur, P.P. 84-85.
12. Singh Bhawani (1993) "Regionalism and National Integration" in Bhawani Singh (ed.) Regionalism and Politics of Separatism in India PP – 17-18.



13. गुप्ता, राकेश, भारत में संघवाद, अन्तर्गत सुशीला कौशिक (सम्पा0) भारती शासन एवं राजनीति हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, पृ0सं0 243.
14. नारंग, अमरजीत सिंह, भारत में क्षेत्रवाद और क्षेत्रीय दल, उपरोक्त पृ0 495.
15. उपरोक्त पृ0सं0 497.
16. Narayan, Iqbal "Cultural Pluralism, National Integration and Democracy in India" in K.R. Bombwall (ed.) National Power and State Autonomy.- P.P. 195
17. कृष्णन, गोपाल (1966) वन पार्टी डाइमेन्शन डेवेलपमेंट एण्ड ट्रेन्डस प्रासपेक्टिव सप्लीमेन्ट टू द इण्डियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ग्ज जनवरी-मार्च पृ0सं0 24-25.
18. सिंह, डा0 वीरकेश्वर प्रसाद (2008) भारतीय शासन एवं राजनीति, ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली पृ0सं0 615.
19. अग्रवाल, जे0 सी0 और एन0 के0 चौधरी (1996) इलेक्शन इन इण्डिया (1952-1996) शिप्रा पब्लिकेशन, दिल्ली पृ0 20.
20. डा0 राधेश्याम द्विवेदी – भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की भूमिका आनलाइन।
21. सर्द, एस0एम0 (2009) भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेन्टर लखनऊ पृ0 493.
22. Chaube S. K. and Susheela Kaushik (ed.) (1999) India Democracy at the turn of century, Kaushika Publishers New Delhi PP. 37.
- 23- Mukherjee Bharti 1992 Regionalism inn India Perspective K.P. Bagchi and Company PP. 37.
24. Datta, Prabhat (1993) Regionalisation of Indian Politics sterling Publishers New Delhi PP – 15 to 37.
25. सर्द, एस0एम0 (2009) पूर्वोक्त पृ0सं0 493.
26. तजपबसम . गोरखालैण्ड संघर्षरत आन्दोलन, समान्तर डैस्क।